सहजानंद शास्त्रमाला

सुख कहाँ

भाग-2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीसहजानन्द शास्त्रमाला

सुख कहाँ

रचियता :
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी, 'सहजानन्द" महाराज

संकलनकर्त्ता व सम्पादक :
डा० मूलचन्द जी जैन एम. ए. पी-एच. डी.
मुजफ्फरनगर

प्रकाशक :
खेमचन्द जैन सर्राफ
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

2000–2001

मूल्य 20

शास्त्रमाला मेरठ
10/

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुख कहाँ

[द्वितीय भाग]

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानंद' महाराज

यादृक् सिद्धात्मनो तादृग्रूपं निजात्मनः। भ्रान्त्या क्लिष्टस्तु संसारे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२॥

जिन्होंने अपने आत्माको पा लिया है अर्थात् जैसा सहजसिद्ध स्वरूप अपना है उसको पा लिया है। केवल स्व स्वरूप जैसा है तैसाही प्रगट कर लिया है अर्थात् जो केवल हो गये हैं, कर्मोंका भी सम्बन्ध हट गया है, शरीर भी नहीं रहा है–रंग तरंग जिनमें नहीं है अर्थात् कषाय व स्पन्द जहाँ नहीं रहा उनका ही नाम है सिद्ध आत्मा। इनको निरखकर यह भव्य पुरुष अपने आत्माका ध्यान करता है। वह प्रभु सिद्ध भगवान, जैसा उनका स्वरूप हैं तैसा ही निज आत्माका स्वरूप है, पर आज क्या हो रहा है सिद्ध आत्मा व निज आत्मामें ? आजके इस आत्मामें और प्रभु में महान् अन्तर है। सिद्ध आत्मा अनन्त सुखी है और यह आत्मा निरन्तर संक्लेश व क्लेश कर रहा है। क्या किसी क्षण यह जीव सत्य विश्राम भी करता है। बिल्कुल थक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय दुनियाके काम करता-करता, फिर भी वहाँपर विपरीत क्लेशका श्रम कर रहा है विकल्प कर करके। यह सब क्लेश क्यों हो रहा है? आत्मविभ्रमसे।

कोई घर जल गया, गिर गया, हमारा क्या गया—हम सरककर दूसरी जगह बैठ लेंगे—हमारा क्या गया अथवा फिर बनवा लिया जायेगा—पैसा आना होता है अन्धाधुन्ध आता है, नहीं आना होता, यूँ ही मिपट जाता है। घटना २-३ महीनेकी है। एक सर्राफका विश्वासपात्र नौकर ११०००) रु० की थैली उठाकर भाग गया। जिनमें १०) रु० देनेकी भी उदारता नहीं थी उनको ११०००) रु० का नुक्सान हो गया। जब धन जाना होता है इसी तरह जाता है। आपको पता ही नहीं है यह धन निकलेगा तो कैसे निकलेगा? व्यर्थमें विकल्प कर करके दु:खी हो रहे हैं। सिवाय विकल्पके और कोई क्लेश नहीं है। माना कि परिवारके लोग बैठे हैं उन्हें खिलाना है। परन्तु यदि अच्छा न खिला सके तो उनका भाग्य। हम कौन करने वाले? विकल्पसे दु:ख कर रखा है। कोई धनी हो जाये, गद्दीपर बैठकर हुक्म चलाये, तो भी गरीबसे कम विकल्प उसके नहीं रहते। अब और धन बढ़ाना है और इज्जत पाना है, बड़ी-बड़ी बाधायें हैं उनको दूर करना है। धनी को तो गरीबसे भी ज्यादा बिकल्प हो सकते हैं, इसलिए अधिक दु:खी है। यह सब अज्ञानका प्रभाव है।

एक जोशी आटा माँगकर अपने घर वालोंको खिलाता था एक दिन एक संन्यासी ने कहा—कुछ तपस्या, धर्म ध्यान भी तो कर। उसने कहा—जब हम आटा ले जाते हैं तो घरके लोग खा पाते हैं। संन्यासी ने कहा—क्या तू खिलाता है, चल मेरे साथ, १५ दिनका नियम ले। कर सत्संग-परिणाम। वह संन्यासी के पास रहने लगा—घर नहीं आया। ढुंढ़वा मचा। एक मखसरे ने कह दिया—उसे तो तेंदुवा ले गया, उसे खा डाला है, हाहाकार मच गया। सबने जान लिया कि मर गया, पड़ौसी इकट्ठे हुए, सबने विचार किया कि उसके स्त्री है, १०-११ बच्चे हैं इनका प्रबंध होना चाहिये। जिसकी अनाजकी दुकान थी उसने ४-५ बोरा अनाज ला दिया, घी वालेने एक टीन घी, कपड़े वालेने २-३ थान कपड़ा, इस तरहसे उसकी मौजसे कटने लगी, पहलेसे बहुत अच्छी तरह। १५ दिन बाद जोशीने कहा— महाराज! घर देख आने दो। कुछ बच्चे तो मर ही गये होंगे। देख तो लूं कौन मर गया, कौन जीवित है? संन्यासीने कहा—अच्छा, पहले छिपकर देखना, फिर घरमें जाना। वह छिपकर गया, छतपर चढ़ कर देखा—घी की पकौड़ी चल रही थी, लड्डू खा रहे थे, बढ़िया कपड़े पहन रखे थे। उसने सोचा ऐसा मेरे रहते भी नहीं था। खुश होकर आँगनमें कूद पड़ा। सोचा अब तो हम घरमें आरामसे रहेंगे। परन्तु स्त्री बच्चोंने जाना कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कोई भूत आ गया। ईंट, पत्थर, अधजली लकड़ी उसको मारने लगे। वह जान बचाकर भागा। आकर बोला—महाराज बड़ी दुर्दशा हुई। महाराज बोले—अरे बेवकूफ जब वे मजेमें हैं तो तुझे कैसे पूछेंगे? तू यहाँ धर्म ध्यान कर।

भैया! व्यर्थमें भार लाद रखा है बहुतोंका। धर्म, न्याय नीतिसे कर्तव्य निभाते हुए जो बात गुजरे गुजरने दो। ऐसा ज्ञानप्रकाश निरन्तर बने। इस रीतिसे चलें। विकल्प करके भी सिद्धि नहीं। संसारी बात भाग्याधीन है और कल्याण की बात पुरुषार्थाधीन। हे नाथ! हममें आपमें इतना अन्तर पड़ गया, हमारी तुम्हारी जाति एकस्वरूप है, कुछ अन्तर नहीं–जिस तत्त्वसे निर्माण आपका हुआ उससे ही मेरा। निर्माण किसी दिन हुआ नहीं, अनादिसे ही उस तत्त्वमय सहजस्वरूप है। यह अन्तर सब भ्रमसे हुआ है। हे प्रियतम! अभी यहाँ बैठे ही बैठे समस्त परको भूलकर कुछ भी अन्य मेरा नहीं साहस दृढ़ है' ऐसा करके सबको भूल कर विश्रामसे बैठ तो सिद्ध आत्माकी झलक यहीं पा लेगा। अन्दाज हो जायेगा कि सिद्ध प्रभु कैसे महत्वशाली हैं। सिद्ध का अर्थ है—जो सीझ गया वह सिद्ध। चावल सीझ जाता है। अर्थात् सिद्ध हो जाता है। अनेक विघ्न बाधाओंका मुकाबला करके कर्त्तव्य पूरा कर लिया, कर्त्तव्य सिद्ध हो गया। यूं ही ज्ञानभावना रूप परमतपश्चरण कर-करके इतने परसे विरक्त हो करके एक तन्तु मात्रसे स्नेह न रखकर, केवल एक निज आत्माकी धुनमें रहकर, इस परम तपस्यामें रहकर

http://www.jainkosh.org

अनेक संकट सहकर जब-जब यह आत्मा सीझ जाता है फिर कभी चोट संक्लेश नहीं सताते हैं। उसी आत्माको सिद्ध कहते हैं। सिद्ध होनेके आगे कुछ नहीं रहता करनेके लिये, नई बातके लिये। सिद्धका अर्थ है बिल्कुल अन्त तक चले जाना, जहाँके बाद जानेका काम नहीं। जो-जो अत्यन्त अन्ततक चले गये हैं जिसके बाद जाना शेष नहीं और फिर उस जानेसे कभी लौटना नहीं होता, उन्हें सिद्ध कहते हैं। जो कर्मोंको जला चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं।

प्रभुभक्तिमें आत्मधन मिलेगा—पुत्र, मित्र, स्त्री, धन की भक्तिमें आत्मधन बरबाद होगा। होते हैं कोई बिरले ज्ञानी संत पुरुष जो पाये हुए बड़े साम्राज्यको भी तुरन्त त्याग देते हैं। कोई अनोखी चीज तो उन्हें मिली, अपूर्व आनन्द ही तो उन्हें मिला जिससे संतुष्ट होकर इस बेगार समागमको त्याग दिया। किसी भिखारीसे कहो जो ४-५ दिनकी मांगी रोटी रखे हैं झोलीमें कि तू इन्हें फेंक दे, तुझे बढ़िया भोजन दूंगा, मिष्ठान्न दूंगा, परन्तु वह नही फेंकता, उसे मिष्ठान्नका पता नहीं अथवा मिलनेकी आशा नहीं। ऐसे ही मोही जीव यह भव-भवके जूठे विषय-अपवित्र, विनाशीक, आपत्तिके कारणभूत अज्ञानके हेतुभूत इन जड़ समागमोंको अपने उपयोगकी झोली में भरे हुए भिखारी बना हुआ फिर रहा है। इसे कोई श्रीमान् कहता है (जो निरन्तर आश्रय करे उसे श्रीमान् कहते हैं) ज्ञानवान कहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है तू इस झोलीमें से असार विषयोंको फेंक दे, तुझे सहज ज्ञानानन्द प्रकाश मिलेगा। उसे आशा ही नहीं इसलिए फेंकता नहीं। कैसा विचित्र भ्रम है ? जिसके कारण विकल्पों का क्लेश सहा जा रहा है।

जैसा सिद्धका स्वरूप तैसा मेरा रूप है। एक भ्रमका पर्दा ओट है। जिसकी ओटमें हम नाटक कर रहे हैं। हिम्मत बने अन्तरंगको, हिम्मत ही क्या जब गलत रास्ते चल उठे हैं तो सीधे रास्तेपर पहुंचनेके लिये हिम्मतका प्रयोग करना पड़ रहा है। हिम्मत क्या करना निजका निज में देखना, यह सीधा काम है। हिम्मत तो विभाव करनेमें द्वन्द्व फंदमें करना पड़ती है। किसी को अच्छा बोलनेमें हिम्मत करनेकी जरूरत नहीं पड़ती, वह तो सीधा काम है। गाली देने में जरूरत पड़ती है हिम्मतकी। दृष्टि तो अपनी, यह तो सीधा काम है। कुछ आत्मकल्याण तो कर या अपने आपको इसी तरह ही संसारमें रुलाना इष्ट है। चार दिन को इस चाँदनीमें मायामयी पुरुषोंमें जो श्रम करेगा वह मर मिटेगा। थोड़ा-सा व्यवहारिक काल्पनिक नाता, इस के लिये इतना विकल्पका श्रम किया जा रहा है।

हे आत्मन् ! अब भी न चेते तो कहाँ चेतनेका अवसर मिलेगा ? अपनी शक्तिको निरख, उससे ही नाता तांता लगा, अन्तरंगकी रुचि रख, फिर कभी व्यवहारमें जो कुछ करना पड़ेगा वह भी होगा, पर विधि पद्धतिसे होगा।

नुक्सान कुछ नहीं है न ऐहिक नुक्सान, न पारलौकिक नुक्सान एक प्रभु-प्रभुशक्तिमें। तू इन हजार लाखोंके दिलमें घुसने की कोशिश न कर। उस एक सिद्धप्रभु वीतराग प्रभुके निकट पहुँचनेकी कोशिश कर उस एकके निकट पहुंचने पर तुझे अपूर्व वैभव मिलेगा और उन लाखोंके भी दिलमें पहुंचने से तुझे क्लेश रहेगा। प्रभु स्वरूपको देख अपनी शक्तिको देख, प्रभुमें शक्तिको देख, शक्तिमें प्रभुको देख, अपनी शक्ति को देख, प्रभुमें शक्तिको देख, खूब अदला-बदली कर मित्रता कर प्रभुसे, समताका स्मरण करके एक रस बन जा तुझे अपूर्व आनन्द मिलेगा। प्रभुकी तरह अपनी शक्तिको निरख कर अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होगा। मेरे जीवन का यही एक निर्णय है, यही अपने जीवनका पक्का निर्णय बना ले।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयोः। रागद्वेष-विधातासम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३॥

अपने आत्माकी जब यथार्थ सुध होती है उस काल में गुरुजनोंके प्रति एक अपूर्व भक्ति उमड़ती है, जिनके चरण-प्रसादसे यह तत्त्व प्राप्त हुआ है। जिस ज्ञानमें अब शान्ति संतोष आ गया है ऐसा ज्ञान प्रकाश जिन गुरुजनोंके चरण प्रसादसे प्राप्त हुआ है उन गुरुजनोंके प्रति उसकी कितनी मान्यता हो जाती है, उसकी तुलना यहाँ कैसे की जाये किसी परिजनादिसे ? मोही पुरुष भी स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

धन आदिको इतना ही मान पाते जितना यह आत्मा निर्मोही गुरुजनोंका उपदेश पाकर उनको बहुमान देता है और उन गुरुजनोंका स्मरण करता है। उसके हर्षका रोमांच भी सर्व शरीरमें प्रकट होने लगता है। गुरुजनोंके उपदेशसे हमें क्या मिला? तुम अपनेको पहिचानो, अपनी ओर झुको अपने आत्मदेवको प्राप्त कर सको तो कोई संकट नहीं आयेगा, क्लेश नहीं आयेगा।

वास्तवमें भी तो भैया! अब भी तो संकट नहीं है। हम और आप जब अपनेमें न समाकर बाहरमें दृष्टि देते हैं तो विकल्प होने लगते हैं। विकल्प ही श्रम है विकल्प ही क्लेश है। क्लेश और कुछ नहीं। इष्ट वियोग हो गया, उस इष्टके मरनेसे क्लेश नहीं हुआ बल्कि उसका ध्यान कर-करके उपयोगमे जो विकल्प हुआ वह क्लेश है। किसी अनिष्ट का संयोग हो गया—अनिष्ट क्या अनिष्ट कोई नहीं, तुम अपनी कल्पनामें विरोध भाव रख रहे हो, इसलिए अनिष्ट दिखता है। वही विकल्प पीड़ित कर रहा है, अनिष्टका संयोग पीड़ित नहीं कर रहा है।

शरीरमें वेदना हुई—क्या करे? शरीरकी वेदनामें तो दुःखी होना ही पड़ता है क्योंकि उसका तो मुझसे घनिष्ट सम्बंध है। परन्तु भैया तू क्या नहीं जानता कि जिनको भेद ज्ञान दृढ़ हो जाता है उनको शरीरकी वेदनामें भी विकल्प क्लेश नहीं होता पुराणोंमें-बहुत उदाहरण मिलते हैं।

http://www.jainkosh.org

राजकुमारके सिरपर मिट्टीकी डोल बाँधकर उपले कोयले जला डाले, ज्वाला उठने लगी। इससे बढ़कर शरीर की व्यथा की क्या कल्पना की जाये? एक मुनिराजको उनका ही एक प्रेमी, जब वह किसी कारणसे उनका विरोधी बन गया, मौका पाकर चाकूसे शरीरकी खाल छीलकर नमक छिड़कने लगा। किसी को कोल्हू में डालकर पेल दिया—किसीको उपलोंके घरमें बन्द करके आग लगा दी, इससे अधिक शरीरकी वेदना और क्या हो सकती थी, ऐसी स्थितिमें भी वे विचलित नहीं हुए, क्लेशित नहीं हुए, यह सब भेदज्ञानका ही प्रताप है। ज्ञानी (भेदविज्ञानी) पुरुष शरीरको अपनेसे न्यारा जानता है। कोई शरीरकी वेदना को जानते होंगे, परन्तु उपयोगमें लाते नहीं अथवा न भी जान रहे हो, ऐसे भी महापुरुष हुए हैं, वे अपनेमें ही लीन रहते हैं। और भैया वर्तमानमें भी देख लो। कोई ज्ञानी पुरुष १०४ डिग्री के बुखारमें भी आत्मदृष्टि करता हुआ नजर आता है। उसी बुखारमें कोई अधिक दुःखी, कोई कम दुःखी दिखता है। अपनेको सुखी करनेका मात्र उपाय भेद विज्ञान है—शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूँ। शरीरको वेदना होती, होने दो—मुझे उससे क्या? मैं आत्मा तो एक अविच्छिन्न पृथक् हूँ, ऐसा भान होता संकटके क्लेशके मेटनेका उपाय है।

यहाँ हम सब एक ही समान हैं। सुख दुःखका उदय, जन्म मरण-शांति अशांति हम आप सबको एक ही ढंगसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती है। यह नहीं कि दुकानदारको दुःख और ढगसे होता हो, त्यागीको और ढंगका, राजाको किसी और ढंगका और भिखारीको किसी और ढंगका। नहीं–सबकी यही एक क्रिया है। परदृष्टिका विकल्प किया बस दुःख हुआ, सबका एक ढंग हैं। शांति पानेका भी एक ही ढंग है–आत्मदृष्टि की, अपने उस सामान्य तत्त्वपर झुकाव किया विकल्प बाधायें दूर हुई, शांति प्राप्त हुई। अपना यहाँ दूसरा कोई सहाय नहीं। पुण्यसे वैभव पाया, थोड़ी कला पा ली, यह भी पा लिया, वह भी पा लिया, पारिवारिक आराम भी पा लिया। लेकिन यह सब क्या है? यह तो एक बहकाने के लिये अथवा यूँ समझो अधिक कष्टमें डालनेके लिये बहकावा मात्र है। इस ओर दृष्टि रखनेपर प्रकाश नहीं मिलता, शांतिकी पात्रता नहीं आती, मोहसे जन्म मरण बढ़ाना पड़ते हैं।

हे आत्मन्! अपनेको अपने लिये विश्वसे एक न्यारा समझो–मुझे कौन पहचानता है? आप सब अपने बारेमें सोचने लगो–सभी लोग इस मूर्तिको निरखकर इस मूर्तिमान से इस पर्यायसे व्यवहार कर रहे हैं। कोई चेतनतत्त्व मुझ चेतन तत्त्वसे व्यवहार करता नहीं। यह सब अन्य चेतन गड़बड़ कर नाना रूपोंमें होकर इस मायामायीसे व्यवहारतः व्यवहार करते हैं, मुझसे कोई नहीं करता। जो मेरे इस वास्तविक स्वरूपको जानता है वह व्यवहार नहीं कर सकता। उसको परिणति तो निराली बन जाती है। मुझसे

व्यवहार क्या करेगा? ठीक है ना, मेरा पहिचाननहारा दूसरा न कोई है।

अपरिचित पुरुषोंमें कोई अपना नाम नहीं चाहता। अपरिचित लोगोंमें अपमानका बुरा नहीं मानना है। जहाँ कोई पहिचानने वाले २-४ पुरुष भी देख रहे हों वहाँ कोई उसका अपमान कर दे उसे बड़ा बुरा लगता है। पर देख तो सही तेरा पहचानने वाला यहाँ कोई एक भी है क्या? कोई नहीं। यदि तुझे कोई वास्तवमें पहिचानने लगे तो वह खुदका हो जाये। छोड़ो परका विकल्प, अब तो अपनी ओर आओ।

मैं विश्वसे न्यारा एक अद्वैत निजस्वरूपमात्र-ज्ञानमात्र हूँ, ऐसी दृष्टि करना अमृतपान करना है। लोग अमृतके लिये इधर-उधर भटकते हैं। यदि बाहरमें अमृत मिल जायेगा तो होगा कैसा? क्या दूध, पानी, शर्बत जैसा, जिसको पीनेसे अमर हो जाये। क्या लड्डू, पेड़े कचौड़ी जैसा जिसको खानेसे अमर हो जाये या पेड़ परके आम, जामुन आदि जैसे जिनको तोड़कर खानेसे अमर हो जाये। कुछ कथाओंमें बताया कि अमुकको अमर फल मिला, परन्तु यह सब कोरी बकवास है। बाहर कहीं अमृत नहीं मिलेगा, अमृतपान तो अपनी आत्माकी दृष्टिमें है, विविक्त, अपने स्वरूपमें तन्मय, निर्विकल्प, ज्ञानप्रकाश, अपने आपकी दृष्टिमें है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अमृतपान करना है तो सोचो मैं विश्वसे न्यारा, एक अद्वैत अखंड चेतन तत्त्व हूं। मेरा कोई नहीं, न मैं किसी का। लेकिन देखिये भैया ! अगर, मगर, लगर, परंतु, किन्तु लेकिन ये शब्द तख्ता पलट देते हैं। अभी कुछ बहुत अच्छी बात देखने सुनने समझनेमें आई थी, लेकिन लेकिनने सब मजा किरकिरा कर दिया, यह लेकिन अपने स्वयंके घरसे निकलकर बाहर खींचे लिये जा रहा है। लेकिन ऐसा क्यों हो रहा है ? यह लेकिन मुझे यूं जबरदस्ती बाहर लिये जा रहा है, क्योंकि मैं अपने घरमें मजबूतीसे स्थित नहीं हूं। इसीसे यह पीड़ित हो रहा है।

अहो, यह आत्मा क्या बन रहा है ? योग उपयोगका कर्ता बना हुआ है। उपयोग तो कुछ न कुछ रहता ही है, फिर इसे लेकिनका शिकार क्यों बनाया ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। योग उपयोग रहो, कोई हर्ज नहीं। परन्तु मैं योग उपयोगका कर्ता बना हुआ हूं, यह दुःखके कारण है। मैं विकल्पित होकर उपयोगका कर्त्ता हुआ, इसलिये मैं ही रागद्वेषका विधाता बन रहा अब तक। कोई समझते हों ये बहुत प्यारे हैं। स्त्री, पुरुष, कुटुम्बी बहुत अधिक प्रिय जंच रहे हों, लेकिन यहाँ उपयोग बाहर ही में तो भटक रहा, वहाँ क्लेश ही तो हुआ। दुर्गतिका कारण ही तो हो जायेगा। मैं रागद्वेषका कर्ता बना रहा, उनका विधाता बना रहा। अब मैं इस बाह्यदृष्टिको त्यागकर विविक्त एक ज्ञानमात्र अपने आप ज्ञानस्वरूपका भान करके अपनेमें

http://www.jainkosh.org

अपनेको देखूं, निरखूं, पहिचानूं तो सुख ही है, शान्ति ही है। मुझे अन्य परमें विश्वास नहीं रहा कि मुझे कोई सुखी कर देगा। मैं किसीसे सुखकी भीख नहीं माँगता। हे प्रियतम ! तुम ऐसी दृष्टि बना लो तो उपद्रव नहीं रहेंगे। सबसे विविक्त अपने स्वरूपमें तन्मय ज्ञानानद मात्र अपने आत्माकी दृष्टिमें लग जाओ तो वहाँ विकल्प खत्म हो जायेंगे, उपद्रव नहीं रहेगा।

भैया ! कोई कुछ कहता है तो वह अपने विकल्पका ही तो कर्त्ता बन रहा है। सब चेतन अचेतन जिस प्रकारसे परिणम रहे है वे अपनी-अपनी सत्ता रखनेके लिये परिणम रहे हैं, अपने उत्पाद, व्यय ध्रौव्य रूप चल रहे हैं, मेरा कुछ नहीं कर रहे। मैं अपनेसे हटकर बाह्यकी ओर जाता हूं। तो अपने विकल्पके कारण अपने को पीड़ित कर लेता हूं। सावनकी तेज वर्षामें जहाँ बिजली चमक रही हो, ओले पड़ रहे हों ऐसी कठिन स्थितिमें कोई कुटी बहुत पुष्ट मिल जाये तो उस कुटीमें बैठकर कौन यह चाहेगा कि उसके बाहर थोड़ा डोल तो लूं। यूं ही अपने आपमें आपका निर्णय करो—द्वन्द्व फंदसे न्यारे इस निज तत्वके अवलोकन की कुटी हमने पाई है जिसके बाहर सब ओर द्वन्द्व-फंद संकट हैं, चारों ओर अनेक उपद्रवों की वर्षा हो रही है तब इस निर्विघ्न आत्मकुटीसे बाहर निकलना श्रेयस्कर नहीं होगा।

जमुनाके बीच ऊपर चोंच निकालकर कछुवा तैर रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है २० पक्षी उसकी चोंच पकड़ लेना चाहते हैं, वह घबड़ा जाता है, परेशान हो जाता है। कोई उसे समझाता है अरे क्यों घबड़ाता है ? तुझमें तो एक भारी कला है जो इस दु:खसे बच जाये। चार अंगुल पानी में डूब जा, वह तेरी सहज कला है। हे आत्मन् ! तू भी अपनी उपयोगरूपी चोंचको उठाकर फिर रहा है। ये संयोग-वियोग, मान, अपमान आदि नाना प्राणी तुझपर झपट रहे हैं तेरी चोंच को पकड़ना चाहते हैं। तू घबराता क्यों है ? तेरेमें तो एक अपूर्व कला ऐसी है जिसके प्रयोग होनेपर सैकड़ों हजारों संकट भी नष्ट हो जायेंगे। अपने ज्ञान-स्वरूप सरोवरमें मग्न हो जा, उपयोगको चोंचको ज्ञानस्वरूपमें डुबा ले, एक भी संकट नहीं रहेगा। विश्वसे भिन्न एक निज तत्वकी दृष्टि करके हम सभी अपनेमें मग्न होकर सुखी हो सकते हैं। हमने अनेक समागम पाये–जैन धर्म मिला, जैन वचन मिले, बुद्धि, बल मिला, ये सब समागम सफल हो जायेंगे यदि हम अपना स्वाधीन स्वरूपदृष्टिका कार्य कर सकें।

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन।
विकल्पेन मुधा वस्त्र: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४।

प्रत्येक पदार्थ सत् है और वह प्रति समय नवीन-नवीन परिणतिको रखता हुआ, पिछली परिणतिको विलीन करता हुआ चलता रहता है। यह पदार्थका स्वभाव है। इस स्वभावके कारण पदार्थका कोई नुक्सान नहीं है। बल्कि इससे उसका स्वरूप लाभ ही है। यदि पदार्थ नवीन अवस्था

धारण न करे तो उनका अस्तित्व ही न रह सकेगा, पर्याय का उत्पाद् न हो तो अस्तित्व नहीं रह सकेगा। इसी प्रकार पूर्व पर्यायका व्यय न हो तो काम नहीं चलेगा। पर्याय की सन्तति रहना ही ध्रुवता है। यही पदार्थमें उत्पादव्यय-ध्रौव्य है। इसीको सत् रज और तम भी कहते हैं। जो ध्रौव्य है वे ही सत् है। जो उत्पाद है वही रज है। जो व्यय है वही तम है। यह तीनों तत्व पदार्थमें ऐसे गुम्फित हैं, जिसके कारण हम कह सकते हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों शक्ति निरन्तर है। ऐसा नहीं कि पहले ब्रह्मा हुआ हो, फिर विष्णु, फिर महेश, ऐसा नहीं है। परन्तु ये तीनों शक्ति अनादि निधन हैं, प्रत्येक पदार्थमें हर समय पायी जाती हैं। पदार्थ अपनी नवीन पर्याय उत्पन्न करे उस शक्ति का नाम ब्रह्मा है। पूर्व पर्याय विलीन करे इसका नाम महेश है। यों चलता हुआ भी पदार्थ सदा सुरक्षित रहे इस शक्ति का नाम विष्णु है।

पदार्थके स्वरूप रहस्यको आजका राष्ट्रीय झंडा भी दुनियाको दिखला रहा है। उत्पादका स्वरूप हरे रंगसे दिखलाया गया है। लोग भी कहते हैं कि यह घर हरा-भरा है, चूहों की तरह बच्चे भागे फिरते हैं। पदार्थमें नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती रहती है इसलिये पदार्थ हरा-भरा है। बिनाशका वर्णन लाल रंगसे किया गया है। लाल, पीला आपसी दोस्त हैं। हरा, पीला रंग किसी रंग पर नहीं चढ़ता। सफेदपर ही चढ़ा करता है। इसीलिये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सफेद रंग बीचमें है। यह सूचित करता है कि इस ध्रौव्य स्वरूपसे ही उत्पाद व्यय लगे हुए हैं। इस तरह राष्ट्रीय झंडा बतला रहा है कि सब पदार्थ सुरक्षित है। किसीका समूल नाश नहीं होता।

पुद्गलोंके उत्पाद व्ययमें हम कुछ हानि नहीं तक रहे। आज काठ है कल जल गया, राख हो गया—कुछ नुक्सान तो नहीं हुआ। न ही उस पदार्थने कोई नुक्सान माना, न उस काठने अपनी तड़फन दिखाई। यूँ ही अपनेमें समझिये। जो कुछ होता है मेरे स्वरूपलाभके लिये होता है, लेकिन हानि के लिये नहीं। अचेतनमें तो कोई अटेक नहीं हुई, फिर चेतनमें क्यों होने लगी ? मैं जिस रूप परिणम रहा हूँ परिणमने दे। क्यों कष्ट मानता है ? बताया तो यह गया था कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य पदार्थका स्वरूप लाभके लिये है, परन्तु यहाँ हानि क्यों हो रही ? यह झगड़ा चेतनके साथ है। जहाँ द्वैतपर दृष्टि हुई, दूसरेसे नाता रखा तो दुःख हुआ। अपने स्वरूपमें रहता तो ऐसी कोई आपत्ति नहीं थी। पर यह तो सबका सरताज बनना चाहता है। विकल्प उठाता, अद्वैत स्वरूपसे हटकर द्वैत स्वरूपमें पहुँचता, इसी कारण आज दुर्दशा हो रही है चेतन की।

हमारी दुर्दशाओंका बीज है कर्तृत्वबुद्धि। मैं कर्ता हूं, मैंने किया, मैं कर दूँगा, कर्तृत्वकी बीमारी सन्तोष नहीं लेने देती। सब कुछ कर चुके पूर्व विकल्पके अनुसार, लेकिन

 http://www.jainkosh.org

उस कर चुकनेके बाद नई बात आ जाती है। और करना है, और करना है, और करना है मुझे करना है मुझे करना है यह धुन तो बनी। पर मुझे मरना है, मरना है, मरना है यह सुध नहीं रही। एक रुई धुनने वाला पुरुष विदेश गया, जब लौटा तो पानीके जहाजसे लौटा। जहाजमें कोई सवारी नहीं थी, अकेला था। जहाजमें हजारों मन रुई भरी हुई थी। रुईको देखकर धुनिया विकल्प करने लगा कि कहाँ तक रुई धुनि जायेगी ? यह हमको ही तो धुननी पड़ेगी, दिल पर असर होने लगा, सिर दर्द होने लगा। विकल्प हुआ, विकल्प बढ़ने लगे, हरारत होने लगी, घर जाते-जाते तेज बुखार हो गया। हाय, रुई मुझे ही धुननी पड़ेगी। डाक्टर वैद्य आये, लेकिन कोई इलाज न कर सका। एक चतुर आदमी बोला मैं चिकित्सा करता हूँ। तुम सब लोग चले जाओ। एकांतमें इलाज करूँगा। सब चले गये, बात चीत होने लगी। भाई तुम किस समयसे बीमार हो ? उस सारी कथा सुनायी। विदेश गया था, जहाजमें आया था, उस जहाज में एक भी आदमी नहीं था, मैं अकेला ही था. ....तुम अकेले ही थे हाँ आदमी तो कोई नहीं था हाँ हजारों मन रुई भरी थी उसमें। चतुर आदमी समझ गया सब रहस्य। बोला—तुम जिस जहाजमें आये, अरे वह जहाज तो अगले बन्दरगाह पर आकर जल गया, नष्ट हो गया, उसमें जितनी रुई थी जल गयी खाक हो गयी। बस धुनिया का

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

चैन आई । भीतर तो विकल्प मचा था वह समाप्त हो गया । अब चित्तमें समा गया मेरे करनेको कोई काम नहीं रहा । मैं कृतकृत्य हो गया ।

भैया ! सुख करनेका नहीं होता है । सुख होता है इच्छा न रहनेका । मुझे करनेको कुछ नहीं पड़ा, मैं कृतकृत्य हूँ । खूब सोच लो—यही तत्त्व मिलेगा शान्ति हर एक परि-स्थिति में । आपके पास किसी मित्र की खबर आयी चिट्ठी द्वारा—आज हम १० बजेको गाड़ीसे आ रहे हैं स्टेशन पर मिलना । बस विकल्प हो गया । मित्रसे मिलने स्टेशन पर जाना है । प्रत्येक काम २-२ घंटे जल्दी कर रहा है । मुझे मित्रसे मिलना है । विचारने उसे बेचैन कर दिया, स्टेशन पहुँचा । गाड़ी लेट तो नहीं है ?···१५ मिनट लेट । उदास हो गया । जब गाड़ी आयी, आँखें नचाने लगा, किस डिब्बे में मित्र है ? डिब्बा मिल गया, डिब्बेमें जाकर मित्र से मिला । डेढ़ मिनट हो पाई, खिड़कीसे झांकने लगा—उतरना है । गाड़ी चल न दे । अरे भैया ! तुझे मित्रसे मिलने का सुख हुआ तो उस सुखको क्यों छोड़ते हो ? वास्तविकता यह है कि मिलनेका सुख नहीं हुआ, मुझे मिलनेका काम भी नहीं रहा इस भवमें शान्ति है ।

हम करने-करनेके विकल्पसे ही खेदखिन्न रहा करते हैं । मैं किसी परद्रव्यको नहीं करता, न मैंने किया और न

मैं किसी परका कभी कुछ कर ही सकूँगा यह मैंने ज्ञानस्व-रूप मात्र जो छेदसे छिदती नहीं, भेदसे भिदता नहीं, पकड़ने से पकड़ा जाता नहीं, जलानेसे जलता नहीं, बहानेसे बहता नहीं, ऐसा यह मैं ज्ञानप्रकाश मात्र आत्मा परमें क्या करूँगा ? यह आत्मा बस खुदका परिणमन ही कर सकता, अपने परिणाम ही बना सकता है । चाहे किसी प्रकारके बना ले । परिणमन स्वयंका स्वयंमें होता है । मैं अपनेमें उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप बना रहता हूँ, परन्तु परद्रव्यका कभी कुछ कर नहीं सकता । एक बार हिम्मत बनाकर, परपदार्थोंसे डोर काटकर, अपनेको अपनेमें लगाकर देखा तो, इससे सकल संकट मिट जायेंगे ।

हम भगवानकी भक्ति करने आते हैं और अपनेमें प्रोग्राम बनाते और यह कभी नहीं सोचते कि भगवानने प्रोग्राम बनाया था जिससे ये सुखी हुए । यह चिंतवश नहीं करते । भैया ! इसका नाम भक्ति नहीं । अफसरसे, मिनिस्टरसे, स्त्री से, पुत्र से क्या हम कम गिड़गिड़ाया करते हैं । यहाँ तो हम एक घंटा हो आते हैं, वहाँ तो २३ घंटा रहते हैं, भगवानने अपने आत्माकी सुध ली थी, आत्मा के भानपूर्वक इन्द्रियोंके ऊपर विजय प्राप्त की । वीतरागता आई, सर्वज्ञ बने । अब अनन्त आनन्दरसमें लीन हैं, शुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निर्दोष हैं। यही उत्कृष्ट स्थिति है। और यह हुये बिना जीवका निस्तारा नहीं है।

आत्मज्ञानकी पदवी के पाये बिना जो हालत हो रही है वह किसीसे छिपी नहीं है। सड़कपर भैंसोंको जोता जाता गर्दन छिल गयी है, खून चू रहा है, जीभ निकल रही है। उस गाड़ीपर मनमाना बोझ लदा है। लाठी चाबुककी मार सह रहा है। गाड़ी वालेसे उसकी शक्ति सौ गुनी है। पर विवश है वह, चल रहा है। यही दशा हम आपकी ही तो है। स्वरूप तो वही है। अब हमारा क्या कर्तव्य है? हमने यह दुर्लभ जैनशासन पाया, श्रावक कुल पाया जहाँ हिंसाका तनिक नाम नहीं। घर भी साफ सुथरा पाया जहाँ हिंसा कतई नहीं। मंदिर भी वैराग्यके वातावरण से युक्त साफ स्वच्छ रहा करता है इस कारण यह समझमें आता कि वहां हिंसा बिल्कुल नहीं है। इतना दुर्लभ श्रावक कुल प्राप्त करके विषयोंमें इस जीवनको खो दें तो मुश्किल से पायी हुई मणिको समुद्रमें फेंक देना है।

मैं किसी परद्रव्यको नहीं करता और न कभी कर सकूंगा, मैं तो व्यर्थ ही खिन्न हो रहा। अब अपने संकल्प विकल्प हटाकर अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊँगा। लोग तो व्यर्थमें स्वावलम्बनकी शिक्षा देते हैं। अपने आप अपने काम करो। दूसरेकी आशा मत करो। यहाँ धर्मके प्रसंगमें अनुपम स्वावलम्बन है। अपने आपको अपने

आलम्बनमें रखो। परका आलम्बन न करे। परको उपयोग-आंगनमें मत लेटने दें तो एक भी संकट नहीं। यह मोही जिस धन वैभव परिजनको प्रिय समझता है वह तो आकुलताका साधन है, कुबुद्धिका कारण बन जाता है। देख तू अपना आप ही विधाता है, रक्षक है। स्वावलम्बन से ही संकटका विनाश कर सकेगा। स्वालम्बनको तजकर परकी आशाका भाव रखा कि दुःखी हुआ। इसलिये कर्त्तव्य के विकल्प हटाकर अपने स्वरूपमें आयें, उसीकी चर्चा करें, उनके निकट आयें, इस अपूर्व क्रियासे संकटोंको दूर करें। सुख यही है।

निर्विकार भगवान् सर्वज्ञदेव अथवा निर्विकारताकी ओर ही बढ़ने वाले गुरुदेवका जब स्मरण हो जाता है तो इस भव्य पुरुषको उसी ओर लगन होती है। उसके नातेमें सब कुछ वही है। निर्विकार प्रभुके ज्ञानमें और निर्विकार निज स्वरूप के ध्यानमें जो उसे आनन्द मिलता है उस आनन्दके लिये यह भव्य पुरुष तन, मन, धनको न्यौछावर करनेके लिये सदैव तत्पर रहता है और उसकी यह दृष्टि रहती है कि निर्विकार गुरुओंके चरणोंमें अपनेको समर्पित करके निर्बाध हो जाऊँ। जैसे कोई बालक चारों ओरसे सताया गया हो, उसे एक ही उपाय नजरमें रहता है—सुखी होनेका, माताकी गोद या पिताके निकट पहुँचना और किसी उपायकी बात सोचता भी नहीं। वह ऐसे ही संसार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के बालकोंपर, संसारके इन प्राणियोंपर संकट आते हैं। उनमें से यह भव्य पुरुष अन्य कुछ भी बात मनमें नहीं लाता, वह निर्विकार प्रभुके चरणोंमें अपने आपको अर्पित कर देता है। लो सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं। जिसे भगवानकी सर्वज्ञताके ध्यानकी प्रमुखता हो जाये तो यह भव्य सोचता है कि हे प्रभु जो कुछ मेरा होना भविष्यमें है वह सब आपके ज्ञानमें ज्ञात है। लो अपने भविष्यके परिणमनके सोचनेका भार क्यों लादूं ? यह सब भार प्रभु पर डाल देता है। उनके ज्ञानमें ज्ञात तो है ही भार क्या डालना ? अपनी चिन्ता, अपना भविष्य, अपना जो परिणमन उस सबकी जानकारी का भार प्रभुको दे देनेसे अथवा देना भी है—उससे प्रभुका बाल बांका नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी मूलमें वीतरागता है, वे उद्विग्न नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी मूलमें वीतरागता है, वे उद्विग्न नहीं हो सकते। जो अल्प ज्ञाता है जानकार नहीं है वह पुरुष थोड़ी बात जानता है, अनेक विह्वलतामें पड़ सकता है। विह्वलताका कारण राग है। मैंने अब तक अपने रागसे बिंधकर नाना प्रकार की चेष्टायें कीं, मैंने किसी दूसरेका कुछ किया क्या ? सबका भाग्य सबके साथ लगा है। मैं उनका कुछ नहीं करता। अत्यन्त भिन्न क्षेत्रमें स्थित परकी बात तो जाने दो। जो अपने एक क्षेत्रावगाहमें है इस शरीरका भी कुछ नहीं करता। यह बूढ़ा नहीं होना चाहता

यह आत्मा अपनेको जवान बनानेकी ही इच्छा रखता है; पर बूढ़ा होना पड़ता है। इस शरीरपर मेरा अधिकार नहीं। तब परपदार्थोंकी बात तो दूर ही हो गई। मैंने इस स्थितिमें भी रागमें बिंधकर परिणमन अपनेमें चेष्टाकी वह भी अपनी ही शान्तिके लिये, किसीपर ऐहसानके लिये नहीं। मोहमें आकर स्त्री, पुत्र, पितासे गिड़गिड़ाये जो बात चाही, उसकी कुछ प्राप्ति कर लो। इतनी क्रिया हो जाने पर भी अथवा स्त्री, पुत्रका मन रखनेके लिये उद्यम किया, इतने पर भी मैंने केवल अपनेमें विकल्प का द्वन्द्व मचाया और कुछ नहीं किया। जो पुरुष करनेकी बात मनमें सोचते हैं, मैंने किया, बच्चोंको पढ़ाया, लिखाया, होशियार बनाया, हजारों रुपये उसपर खर्च किये, कदाचित् वह लड़का हो जाये प्रतिकूल जैसाकि प्रायः होता ही है, बिरला ही लड़का सेवामें निरत रहता है, तो उस प्रतिकूलताके प्रसंगमें बड़ा क्लेश उठाना पड़ रहा है। किसीके चित्तमें समाया है मैंने इतना बड़ा किया, पढ़ाया, इसे तो मेरा जीवन भर ऐहसान मानना चाहिये था पर यह सब उलटकर चल रहा है। भैया ! सही ज्ञान रखता तो क्लेश न होता। मैंने जबके परिणामसे जब की चेष्टा की, अबके परिणामसे अपनेमें विकल्प कर रहा हूँ। यह तो अपने उत्पादनके अनुकूल परिणमेगा। ऐसा ज्ञानीका भाव रहता है और वह दुःखी नहीं होता। दुःख दूर करनेका उपाय एक ज्ञान है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भैया ! विषयोंमें पड़कर तत्काल आकुल हुआ, भविष्य में भी आकुल रहेगा, पर भ्रमवश मौज मानता है। इससे शांति का पद तो नहीं बनेगा। सुख अन्यत्र है कहाँ ? स्वयं यह आत्मसुख स्वरूप है, ऐसा निर्णय करके दुःखकी उल्टी चेष्टाका परित्याग कर दो, सुख होगा। कर्तृत्वका अभिमान मत करो। एक देहाती भाईका लड़का बड़े शहरमें होस्टलमें रहकर पढ़ता था। यह देहाती पिता कुछ रुपये लेकर, कुछ खानेका सामान लेकर गया यह सोचकर कि मैं ही सीधा पुत्रको दे आऊँगा। आज मैं खुद ही दे आऊँ। आया बोर्डिंगके बाहर उसने खबर दी। बोर्डिंगके भीतर गया, लड़का आ गया सामने, उसे कपड़े, भोजन सामग्री, रुपये सब दिये। पर उस लड़केके साथ उसके ५-६ मित्र थे। बापके सामने ही उन्होंने पूछ लिया यह कौन है ? लड़केने कहा—यह मेरा कारिन्दा है, मेरा मुनीम है। बापका चित्त बदल गया यह सुनकर। बापने मनमें ठान ली कि अब यह मेरा लड़का नहीं है। उस लड़केने अपनी शान ही तो रखी कि कहीं मेरे मित्र यह न समझें कि घुटनों तक धोती पहिने तनीदार कुर्ता पहने, पगड़ी ओढ़े यह इसका बेवकूफ बाप है। इसी शानके लिये तो कहा। सब अपनी-अपनी रागकी वेदना में बिंधकर अपनी शांतिके लिये चेष्टा करते हैं। यह बात ध्रुव सत्य है। विश्वास कर लोगे संकट दूर हो जायेंगे। विश्वासमें ही न जमे तो जैसा होता आया है होता चला जायेगा।

http://www.jainkosh.org

भैया ! जरा अपनेआप पर भी दृष्टि दो। मैं किसी भी पर-प्राणीका उपकार भी वस्तुतः नहीं करता। वहाँ भी मैं अपनी परिणतिकी ही चेष्टा करता हूं। परोपकार करनेमें रहस्य क्या ? वैसे तो यूं समझमें आना चाहिये कि कोई ऐसा बेवकूफ ही होगा जो दूसरे के लिये चेष्टा करे, परिश्रम करे, अपने शरीरको तकलीफ दे, धन समय भी खर्च करे। समझमें तो सीधा यूँ आना चाहिये था, पर परोपकारमें रहस्यकी बात यह है कि इस जीवको चाहिये शांति और शांति प्राप्त होती है शांतस्वरूप निज आत्म-तत्त्वके निकट बसे रहनेमें। ज्ञानी पुरुष शांतिके प्रसंगमें ऐसे उपायकी धुनमें रहा करता है, किन्तु जिन-जिन क्षणोंमें इसकी दृष्टि अपनेपर टिकी रहनेमें क्षम नहीं होती उन-उन क्षणोंमें यह पुरुष कहीं बेकार तो बैठा नहीं रह सकता, सो उस समय क्या करना चाहिये ? यह रास्तेसे उल्टा न चला जाये, कहीं विषयोंकी साधनामें पतित न हो जाये उसका उपाय परोपकार है। परोपकार भी अपनी मलिनता मेटनेके लिये और शांति प्राप्त करनेके लिये किया जाता है। इसी कारण ज्ञानी पुरुषोंके द्वारा परका उपकार होता रहता है, परन्तु वस्तुतः मैं परका उपकार नहीं करता और न उस क्रियासे शांति आती है।

सब जीव शांतिके लिये अपनी-अपनी चेष्टा किया करते हैं। कोई मेरा मित्र नहीं, कोई बैरी नहीं, यह पदार्थ का स्वरूप है। हम व्यवहारमें दूसरेकी क्रिया निरखकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अपने ही में भी यह सत् प्रकाश बनाये रहे कि प्रत्येक जीव अपनी ही शांतिके लिये चेष्टा करता है, दूसरेका परिणमन नहीं करता। मंदिरमें आते हैं। भगवानकी मूर्ति के सामने एक, आध घंटे ध्यान लगाते, पाठ पढ़ते हैं और भगवान आपकी बात रंच भी सुनता नहीं और न अपनी जगहसे उठकर तिरानेके लिये आता है। फिर भी हमारी भक्तिमें यह प्रताप है हम उनके गुणोंके स्मरणसे अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्ति करते हैं, शांत हो जाते हैं, भव-भवके संकटको नष्ट कर देते हैं।

भैया! परका परमें अकर्तृत्व न होता तो जगतमें अव्यवस्था हो जाती, कोई किसीका कुछ कर दिया करता होता तो प्रलय मची होती। किसीकी सता नष्ट हो जाती, कोई किसी को मिटा देता, जगत ही शून्य हो जाता, यह कुछ रहता नहीं। कोई किसीका कुछ कर नहीं देता। यह आत्मा अपना ही परिणमन करनेमें समर्थ है। यही सब विज्ञान अपने चित्तमें उतारनेके लिये प्रभु और गुरुओंकी, पंचपरमेष्ठीकी उपासनामें हम लग जाते हैं। हम सुख ही तो चाहते हैं तब जो सुखी होनेका सीधा यथार्थ उपाय है उसका आलम्बन लें। मैं स्वयं सुखस्वरूप हूं, परिपूर्ण हूं, मेरेमें कुछ अधूरापन ही नहीं। किसीसे क्या आशा रखना, ये सब विकल्पोंको छोडकर विश्राम पाऊँ और अपनेमें अपने आप अपने लिये सुखी होऊँ। यह ज्ञाता मोह त्यागकर

जितना अपने स्वरूपमें आयेगा उतना ही विश्राम पायेगा, ऐसा करना अपने आपमें सुखी होनेका उपाय है।

प्रत्येक पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व। इन ६ गुणों का बना पदार्थ सत् ही है। अस्तित्व गुणके प्रतापसे पदार्थ सत् रहता, किन्तु यदि अस्तित्व गुण यह स्वच्छता बरतने लगे कि हम किसी रूप रहें, किसी परपदार्थ रूप रहे सब पदार्थ रूप रहें, हमें तो अस्तित्वका काम मिला है, ऐसी स्वच्छन्दता नहीं चल सकती। क्योंकि उसका प्रतिशोध करनेके लिये वस्तुत्व गुण है। वस्तुत्व गुणके कारण पदार्थ स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। उसमें ही अर्थ क्रिया हो सकती है। ऐसे भावको लेकर वस्तुत्व गुणका यह भी लक्षण करा है जिसके प्रतापसे अर्थ क्रिया हो वह वस्तुत्व गुण है। अब यह वस्तुत्व गुण यह स्वच्छन्दता बरतने लगे, मेरा तो काम होना है, परस्वरूपसे नहीं होना है। मैं रंच नहीं परिणमूंगा, मैं अन्दर बाहर नहीं आऊँगा, मैं तो ध्रुव परिणतिही रहूँगा। अपने स्वरूपसे हूँ, परसे नहीं। यह स्वच्छन्दता नहीं चल सकती। क्योंकि साथ ही ६ गुण भी तन्मय है। ऐसी ६ शक्ति के प्रतापसे यह पदार्थ निरन्तर परिणमता रहता है। किसी भी पदार्थका एक क्षण भी परिणमन बन्द नहीं होता। पदार्थका ऐसा स्वरूप ही है। लो अब तो ६ गुणको बहुत बड़ा अधिकार मिल गया। यह पदार्थको परिणमाता रहे। अब यह स्वच्छन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बन जाये। मुझे तो यह अधिकार मिला है कि मैं अपने को परिणमाता रहूँ, चाहे किसी रूप परिणमाऊँ, जैसी मर्जी हो तैसा बनाऊँ ऐसी स्वच्छन्दता वस्तुत्व गुण नहीं कर सकता, क्योंकि साथमें अगुरुलघु गुण भी तन्मय है। इस अगुरुलघु गुणका काम है पदार्थको न गुरु बनने देना, न लघु बनने देना अर्थात् पदार्थ गुरु तब ही तो बन सकेगा जब पदार्थमें अन्यका गुण या पर्याय आ जायेगा। पर ऐसा गुरुत्व नहीं है अर्थात् किसी परपदार्थसे कोई गुण अथवा पर्याय किसी पदार्थमें आता नहीं। और यह पदार्थ लघु तब बने जो कुछ इसमें शक्ति है इसमेंसे निकलने लगे। परन्तु ऐसा भी कभी नहीं होता। अगुरुलघु गुणने सब अव्यवस्था दूर कर दी। प्रत्येक वस्तु इस गुण के प्रतापसे किसी न किसी आकारमें रहती। और प्रदेशत्व गुणके कारण पदार्थ किसी न किसी ज्ञानके द्वारा ज्ञेय रहता है। इस श्लोकमें पदार्थके उन ६ साधारण गुणोंमें अस्तित्व गुणका समर्थन करता हुआ, अपने आपमें समा जानेके लिये शिक्षा दी है। इस मेरे आत्मासे कुछ भी चीज बाहर नहीं जाती और न किसी पदार्थसे कोई चीज मुझमें आती। प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वतन्त्र है। भले ही विभाव-परिणमन का निमित्त पाकर विभावरूप परिणमे, परन्तु उस स्थितिमें भी यह उपादान अपनेमें अपनेरूप परिणमनेकी शक्ति लेकर नहीं परिणमता। जो मुझमें है है वह कहीं जाता नहीं, जो मुझमें नहीं है वह कभी आता

http://www.jainkosh.org

नहीं। जो मुझमें है उसका दुरुपयोग कर लो अथवा सदुपयोग कर लो, इतने तक ही हमारी करतूत है। लेकिन परको गुणपरिणमन सौंप दूं और किसी परसे कुछ ले लूँ यह नहीं हो सकता। जो यह मानता है मुझे घरसे, धनसे इस प्रशंसासे सुख होगा, यह कैसे हो सकता ? मैं किसीको सुखी दुखी कर दूं, मैं किसीको समर्थशाली बना दूं यह कैसे हो सकता ? सब जीव अपने-अपने परिणाम करते हैं और अपने-अपने परिणाम भोगते हैं। मैं किसी दूसरेको कुछ करता हूं अथवा परका सुख भोगता हूँ यह कल्पना करना अपने आत्मप्रभुपर अन्याय करना है। एक घरमें ६-७ भाई थे। दैववश वे गरीब हो गये, खानेको भी तंगी हो गई। एक बार वे सब अपनी मौसीके घर गये, वहाँ १०-१५ दिन अच्छे कट जायेंगे। पहुंच तो गये। पर उनकी मौसी कंजूस थी। और जब किसी पर गरीबी आ जाती है तो गरीबीमें पूछ कम रहती है। धनी रिश्तेदार को सब पूछते हैं। मौसी बोली—बेटा ! तुम लोग अच्छे आ गये, बताओ क्या-क्या खाओगे ? लड़के बोले, जो कुछ खिलाओ पकवान पूरी लड्डू। गाँव के बाहर तालाब था। नहाने चले गये, दो घंटे नहानेमें लगे। वहाँसे मन्दिरमें गये। एक घंटा लगा। इतनेमें मौसीने उन सब भाईयोंके कपड़े आदि एक बनियेके गिरवी रखकर उन पैसोंसे आटा, घी आदि खरीदकर भोजन बनाया। वे सब भोजन करने आये। बड़े मिष्ट भोजन थे। लड़के भोजन करते जायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और कहते जायें मौसीने कितना अच्छा भोजन बनाया है। मौसीने कहा, खाओ तुम्हारा ही तो माल है। जब छककर खा चुके, कपड़े पहनने गये तो कहा—मौसी कपड़े तो हैं नहीं। मौसी बोली—हमने कहा था—खाते जाओ तुम्हारा ही तो माल है। तुम्हारे कपड़े अमुक बनियेके यहाँ गिरवी रख दिये। जैसे लड़के खा तो रहे थे अपना माल पर, इस भ्रमसे कि हम मौसीका भोजन कर रहे हैं, सुख मान रहे थे। इसी तरह हम भोग तो रहे हैं अपना सुख, अपने आत्माका सुख, पर मान रहे हैं विषयोंका, इज्जत का सुख। जो मुझमें है मुझसे जाता नहीं, जो मुझमें नहीं है वह कहीं बाहरसे आता नहीं।

***

गहरी खोज के बाद......

"सुख"

मिला यहां.....

इस श्रद्धा में :—

१. मेरी चेष्टाका फल मुझमें होता है अन्यमें नहीं। बाह्य पदार्थमें हम कुछ नहीं कर सकते, केवल अपने ज्ञानमें ही कर सकते हैं व करते है।

२. मैं अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे हूँ, परके से नहीं।

३. मैं एक हूँ, अद्वैत हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्यस्वरूप वाला हूं, स्वतन्त्र हूँ पर-पदार्थ से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा का अकेलापन विचारू। देह भी पर है।

४. किसी आत्माका किसी आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं, रागका रागसे सम्बन्ध है।

५. मैं तो अकिञ्चन हूँ मेरा कुछ नहीं है।

६. मुझे परेशान करने वाले, दु:खी करने वाले कोई बाह्य चेतन अचेतन पदार्थ नहीं है।

७. मेरी जितनी भी अवस्थायें हैं उनमें ले जाने वाला मैं ही तो हूं, अत: मैं ही अपना गुरु, अपना नेता हूँ।

८. अपने ही भावोंसे अपना कुछ होता है।

९. एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं। सम्बन्ध निषेधके अतिरिक्त शांति का कोई उपाय नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

१०. ज्ञान न तो ज्ञेयको कुछ करता ही है और न उसको भोगता ही हैं।

११. मैं अनाथ हूँ, कोई भी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं।

१२. पहले अपने आत्मतत्व पर दया करूं, अपनेको संभालूं, बादमें चाहे जो प्रवृत्ति करूं।

१३. औरकी तो बात जाने दो, ममतामयी मांकी गोदमें पड़ा हुआ बालक भी कालका ग्रास हो जाता है और मां उसको बचाने में असमर्थ होती है।

१४. दुःख 'यह मेरी है या वह मेरी थी' इस विकल्पमें है, पदार्थ में नहीं। वस्तुसे मोह हटालो तो उसको न पाने अथवा खोनेका दुख नहीं होगा।

१५. तृष्णाके बढ़ावमें दुःख है और घटावमें सुख। इच्छासे चिन्ता उत्पन्न होती है और जहां चिन्ता हुई क्लेश अनिवार्य है।

१६. जैसे-जैसे विषयाशा बढ़ती जाती है, बंधन भी बढ़ता जाता है। जितना कम सम्बन्ध होगा उतनी ही कम चिन्ता होगी।

१७. असन्तोष ही दरिद्रता है। संग्रह करने से सुख नहीं। सुख तो आशा का अभाव है। जब आशा नष्ट हो जाती है तभी सिद्धि होती है।

१८. किसीसे कुछ न चाहे (यहां तक की मोक्ष भी नहीं) क्योंकि मोक्ष जैसी दुष्प्राप्य वस्तु भी तो अपनी आत्मामें बसे हुए परमात्माकी कृपासे ही प्राप्त होगी।

 http://www.jainkosh.org

१९. सुखके अर्थ परपदार्थकी प्रतीक्षा करना सुख की हत्या करनी है। परपदार्थोंमें आशा करनेसे परपदार्थ मिलते भी नहीं और मुफ्तमें हम दुःखी भी बने रहते है।

२०. अपनी इच्छाके विपरीत परिस्थिति उपस्थित होने पर भी मैं शान्त बना रहूं। क्रोधके कारण मिलनेपर शांति रखना ही शांति है।

२१. शांतिका आधार तो इच्छा का अभाव है।

२२. मैं संसारमें तो बसूं (नहीं तो जाऊँ भी कहाँ) परन्तु संसारको अपने में न बसाऊँ।

२३. यह विषयभोग बड़े सरल दिखते हैं, पर बड़े महंगे पड़ेंगे।

२४. अन्तर्दृष्टि करूं तो तत्त्व मिले. बाह्यदृष्टि होनेपर तो दुःख ही मिलेगा।

२५. शांति तो तत्वमें ही है। तत्व—अर्थात् ऐसा ज्ञान होना जिसमें राग द्वेषका लेश भी न हो।

२६. 'स्व' का एकपन, एकाकीपन ही मंगल हैं, वही आत्मा की रक्षा करने के लिये दुर्ग है।

२७. अपने स्वभाव की ओर ढला हुआ स्वरूप ही मेरा शरण है।

२८. यदि ज्ञानमें उपयोग हो जाये तो फिर बाह्यमें कुछ ही होता रहे, मेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२९. भगवान् आंखोंसे नहीं दीखता, परन्तु राग, द्वेष, मोह के अभावमें आत्मानुभव होनेपर परमात्मा अनुभव हो जाता है।

३०. मैं तो ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप हूं, अजन्मा हूं, अमर हूं, बस मेरी तो यही स्थिति हो कि मैं केवल ज्ञानमय आत्मा तो रहूं, पर औरकुछ न रहे।

३१. स्वभाव विकासका कारण तो निज मग्नता ही है।

३२. जानने मात्रकी दशामें अर्थात् ज्ञानदशामें दुःख नहीं।

३३. जिस रूप जो पदार्थ परिणमता है परिमणने दूं। मोही बनकर क्लेशको प्राप्त मत होऊँ। सदैव अपनी आत्मा में ही रत रहूँ।

३४. स्वास्थ्य अर्थात् 'स्व' में स्थितिके बिना निर्मलता नहीं आ सकती, कल्याण नहीं हो सकता।

३५. चारों ओर घूमने वाले अपने उपयोगको यदि सब ओरसे खींचकर आत्मामें केन्द्रित कर दूँ तो मैं (आत्मा) इतना चमत्कृत हो जाऊँगा कि कर्मोंको जलाकर एक दिन परमात्मा अवश्य बन जाऊँगा।

३६. जगतकी बात छोडूं, अपनेको ही अपने अनुकूल बनाऊँ। अपना लोटा छानूं, जगतका कुंआ छाननेसे कोई लाभ नहीं।

३७. आशा करते-करते तो अनन्तकाल बीत गया, अब तो इस नैराश्यमय ज्ञानके अनुभवकीही चटाचटी लगाऊँ।

३८. मैं सामान्यपर ही दृष्टि लगाऊँ, मुझे कुछ न सुहावे, कुछ न रुचे, किसी भी पदार्थसे कुछ प्रयोजन न रखूँ, एक परमात्मतत्वका ही लक्ष्य करूँ।

३९. संसारकी जो परिस्थिति है कही नहीं जाती! सबको एक बार भुलाकर ज्ञानपुञ्ज आत्माका तो अनुभव हो।

४०. यदि आत्मरमणकी वस्तु मिले तो पर-रमण स्वयमेव ही छूट जायेगा। बस यह समझ लूँ कि सब कुछ छोड़नेके बाद किसमें उपयोग लगाऊँ ? क्योंकि उपयोग कहीं न कहीं लगेगा ही।

४१. सुख तो अपनेमें ही है, बाह्यमें ढूंढना व्यर्थ है।

४२. जहाँ आशा और प्रतीक्षा होती है वहाँ त्याग नहीं। यदि आत्म कल्याणकी भावना है तो आत्माका हित हो यही धुन रहे।

४३ जीवनके अर्थ हैं—निराकुलता होना, बेफिक्री होना, सन्तोष होना, आत्मस्थिरता होना।

४४. जो परिस्थिति इस समय मेरी है उसमें ही सन्तुष्ट रहूं। यदि ऐसा नहीं है तो भविष्यमें होने वाली स्थिति में तो सन्तोष होना असम्भव ही है।

४५. अपनी आत्मामें उत्साह रखना, बल रखना, जैसी भी परिस्थिति हो प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार व सहन कर लेना—यही सुख और शांतिका मार्ग हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

४६. मैं ऐसा बल प्राप्त करूँ कि जो संयोग व जो सम्पत्ति, वैभव प्राप्त हुआ है उसमें मेरा ममकार अर्थात् येमेरे हैं ऐसी कल्पना ही न हो।

४७. राग, द्वेष, मोहरहित परिणाम होना यही महान यज्ञ है, यही पूजा है, यही स्वाध्याय है।

४८. ठगा जाना बुरा नहीं ठगना बुरा है।

४९. अपनी करतूतसे अरुचि हो जाये, बस यही करना है और कुछ नहीं।

५०. दु:ख उपस्थित होनेपर भी ज्ञानसे मेरे उपयोगकी च्युति न होवे।

५१. बड़प्पन मोह वढ़ानेमें नहीं हैं। बड़प्पन तो मोहके कम होने नाश होनेसे है।

५२. सुख तो ज्ञान और त्यागका फल हैं।

५३. परमात्माकी उपासना करनेका अर्थ है अपनी आत्मा की उपासना करना।

५४. व्यवहारके साधन द्वारा व्यवहारसे मुक्ति पाकर निश्चयमें प्रवेश करूँ।

उपर्युक्त श्रद्धाके बल पर ही मैं अपने द्वारा, अपनेमें, अपने लिये स्वयं सुखी होऊँगा।

—मूलचन्द जैन

Version 1